प्राक्कथन

आराधना का शाब्दिक अर्थ है ह्व पूजा, उपासना, सेवा। आत्म-निरीक्षण, आलोचना तथा गुणानुवाद के साथ इष्ट की उपासना के द्वारा आत्मा को निर्मल और भारहीन बनाने की पद्धति है ह्व आराधना। लगभग तीस महान् आचार्यों, संतों तथा भक्त श्रावकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्राकृत, संस्कृत और देशी भाषाओं में आराधना की काव्यात्मक रचनाएं की हैं। तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य महान् आगमवेत्ता, तत्त्वज्ञानी, महान् कवि व अद्‌भुत ध्यान-योगी थे। उनके द्वारा रचित 'आराधना' भाव, भाषा, लय, प्रभाव आदि सभी दृष्टियों से एक उत्कृष्ट कृति है। इसकी रचना जयाचार्य ने सम्वत् 1935 (श्रावण मास) में की थी।

जयाचार्य कृत 'आराधना' के विषय में आराधना ग्रन्थ की संपादक एवं अनुवादक साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी ने लिखा है - स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार की आराधना का उल्लेख मिलता है - ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चारित्र अराधना। जैन साधना पद्धति में आराधना और आराधक दो शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनका संबंध वर्तमान और आगामी दोनों जन्मों के साथ जुड़ा हुआ है। जो व्यक्ति वर्तमान जीवन में ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सम्यक् आराधना करता है, वही आराधक होकर मरता है तथा अगले जन्म में पूर्व जीवन से अधिक आध्यात्मिक विकास करता है। इसलिए हर व्यक्ति आराधक अवस्था में मृत्यु का वरण करना चाहता है।

श्रीमद् जयाचार्य कृत 'आराधना' साधु जीवन को ध्यान में रखकर की गयी रचना है। साधु पाँच महाव्रतों की पूर्ण पालना करते हैं, जबकि श्रावक देशव्रती होते हैं। उनकी आराधना के स्वर साधुओं से भिन्न होना स्वाभाविक है। जैन दर्शन में धर्म साधना के दो रूप बताये गये हैं - प्रथम अणगारधर्मी पंचमहाव्रतधारी मुनि, दूसरे अगारधर्मी धर्म के उपासक श्रावक। साधुजीवन में तीन करण (मन से, वचन से, काया से), तीन योग (करूं नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं) से समस्त पापकारी प्रवृत्तियों का त्याग होता है। श्रावक पूर्णव्रती नहीं होता, वह देहरी के दीपक की भांति आंशिक प्रत्याख्यानों के साथ अपने आध्यात्मिक और सांसारिक जीवन को प्रकाशित करता है। उसकी आराधना का लक्ष्य भी संसार-भ्रमण से मुक्त होना ही है।

श्रीमद् जयाचार्य कृत साधु आराधना जीवन के अन्तिम समय में भाव-शुद्धि और चित्त की निर्मलता के लिए किया जाने वाला विशेष अनुष्ठान-पाठ है, जिसके अन्तर्गत मुनि अपने

संयमी जीवन में मूर्च्छा, प्रमाद या कषायवश हुए दोषों की आलोचना करता हुआ प्रायश्चित स्वीकार कर उनका परिष्कार करता है। श्रावक श्रेष्ठ श्री गुलाबचन्द जी लूनिया द्वारा रचित 'श्रावक आराधना' का लक्ष्य श्रावक को जहाँ उसके श्रावक जीवन की धन्यता का बोध कराना है वहीं उसके द्वारा स्वीकार किये हुए व्रतों की आलोचना करना, गुरु के पास दोषों के प्रायश्चित स्वीकार करना तथा आराध्य की उपासना करना है। श्री लूनिया जी की आराधना जीवन में क्रमशः चलने वाला अनवरत अनुष्ठान है, जो हर बार आराधक को अध्यात्म की नई उँचाई पर ले जाता है, उसके चित्त को निर्मल बनाता हुआ उसको द्रुत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढाता है।

श्री लूनियाजी ने सम्वत् 1972 में (ईस्वी सन् 1915 में) **श्रावक आराधना** की रचना की थी। श्रीमद् जयाचार्य द्वारा अपने जीवन काल के अन्तिम वर्षों में रचित आराधना के ठीक 37 वर्ष बाद। श्रावक आराधना की रचना भी आराधना की भांति ही भाषा, शैली, काव्य-कला तथा देशी रागों के अनुसार की गयी है। श्रीमद् जयाचार्य कृत 'आराधना' के दस द्वार हैं, ठीक उसी क्रम से श्रावक आराधना के भी दस द्वार हैं -

1. आलोचना (आलोयणा)
2. व्रत-उच्चारण
3. क्षमापना
4. पाप-परिहार
5. चार शरण प्रतिपत्ति
6. दुष्कृत निंदा
7. सुकृत अनुमोदन
8. भावना
9. अनशन
10. पंच-परमेष्ठि वंदन

किन्तु; श्रावक गुलाबचन्द जी ने 'श्रावक आराधना' को श्रावक जीवन से जोड़ते हुए प्रारम्भ में एक अतिरिक्त गीतिका की रचना की है। इस गीतिका के प्रारम्भ में सात दोहे दिये गये हैं, जिनमें व्रतधारी श्रावकों को केवलि-भाषित धर्म की रीति-नीति पर चलने का परामर्श दिया है। भक्तकवि ने इसके साथ ही अपनी रचना को श्रीमद् जयाचार्य की रचना की अनुकृति घोषित करते हुए अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा है-

''आराधना जयाचार्य कृत, जोड़ पुरातन जान।
तिण अनुसारे मैं कहूँ, सुणज्यो चतुर सुजान।।''

इसी क्रम में व्रतों और उनसे संबन्धित अतिचार-दोषों की खोलकर व्याख्या करते हुए प्रथम द्वार 'आलोचना' में तीन गीतिकाएं प्रस्तुत की हैं। बारह व्रतों के अतिचारों की विस्तार से की गयी सहज-सरल आलोचना व्यक्ति के चित्त और मन को भावों से परिपूर्ण बना देती है। प्रत्येक द्वार की गीतिका के बाद जयाचार्य कृत 'आराधना' की भांति छोटे-छोटे कलश-छंदों के माध्यम से गीतिका का संदेश और कर्त्तव्य का संकेत दिया गया है।

श्रावक आराधना

राजस्थानी भाषा में रचित 330 पदों (दोहे-35, गीतिका पद 275, कलश छंद 20=330) की यह रचना अत्यंत हृदयग्राही होने के साथ-साथ काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट भक्ति-काव्य है। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि शब्दों का स्थान-स्थान पर यथेष्ठ रूप से प्रयोग किया गया है; किन्तु उससे इस काव्य-ग्रन्थ की शोभा बढी है, अर्थ स्पष्ट हुए हैं तथा भावों की तरतमता को नई ऊर्जा प्राप्त हुई है।

यद्यपि श्री लूनिया जी की काव्य-रचना सहज-सरल शैली में हुयी है, तथापि राजस्थानी (ढूँढाडी+मारवाडी) भाषा के देशज शब्दों तथा जैन-तत्त्व के पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से रचना सामान्य हिन्दी पाठकों के लिए पूरी तरह सुगम्य नहीं है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इसके हिन्दी भाषान्तर की आवश्यकता महसूस की गयी। मूल रचना के पदों की हिन्दी में गद्य व्याख्या करने की अपेक्षा कठिन, अपभ्रंश और पारिभाषिक शब्दों को हिन्दी पद्य में इस प्रकार प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है कि आराधना का उपासक प्रत्येक पद के अर्थ को हृदयंगम करता हुआ इसका आनन्द पढने के साथ-साथ गा कर भी उठा सके।

किसी भी कृति का भाषान्तर, व्याख्या और अन्य किसी भी रूप में प्रस्तुति मूल कृति से कभी श्रेष्ठतर नहीं हो सकते, तथापि जो पद्यात्मक भाषान्तर यहाँ प्रस्तुत किया गया है वह कितना उपयोगी बन पड़ा है, इसका निर्णय तो सुधी पाठकगण और उपासक ही करेंगे।

देशज तथा पारिभाषिक शब्दों की विशेष जानकारी प्रस्तुत कृति के अन्त में दी गयी शब्द सूची में अंकित है। आराधना के आन्तरिक भाव को समझने में यह सामग्री विशेष उपयोगी होगी ।

'श्रावक आराधना' के यशस्वी रचनाकार श्रावक-श्रेष्ठ श्री गुलाबचन्द जी लूनिया के पौत्र श्री पुखराजचन्द लूनिया एवं उनकी पौत्रवधू श्रीमती रत्ना लूनिया अध्यात्म एवं लोकहित की कृतियों के सृजन और संरक्षण में सदैव तत्पर रहते हैं। उनका ध्यान विशिष्ट भक्त-कवि गुलाबचन्द जी की इस महान् कृति को पुस्तक रूप में प्रस्तुत करने की ओर गया। तत्त्वज्ञ साधु-साध्वीवृन्द, प्रबुद्ध विद्वद्‌गण आदि ने 'श्रावक आराधना' तथा व्रतों पर अपने विद्वत्तापूर्ण लेख प्रदान किये, उन के योग से इस ग्रन्थ की सार्थकता में महती वृद्धि हुई है।

राजस्थानी भाषा के महान् साहित्यकार, बेजोड़ कवि, तेरापंथ के चतुर्थ पट्टधर ''आराधना'' के रचनाकार श्रीमद्‌जयाचार्य की प्रज्ञा के अधिकृत उत्तराधिकारी श्रद्धेय आचार्य श्री महाप्रज्ञ, युवामनीषी एवं तत्त्ववेत्ता युवाचार्य श्री महाश्रमण एवं परम विदुषी सरस्वतीस्वरूपा महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी के पावन मार्गदर्शन से यह ग्रन्थ एक मूल्यवान कृति बन गया है, पूज्यवरों के प्रति विनम्र प्रणति!

'अर्हम्' – 118 कैलाशपुरी
टोंक रोड़, जयपुर – 18

- महेन्द्र जैन